राजनैतिक शोरगुल में डूबता मौसम विज्ञान

पी. बालाराम

आजकल हर पढ़ा लिखा व्यक्ति मौसम में बदलाव की बात कर रहा है। गर्मी का मौसम आने पर जैसे ही दिन गरम होने लगते हैं, इसे वैश्विक तपन का पक्का प्रमाण मान लिया जाता है। अचानक होने वाली मूसलाधार बरसात या बाढ़ जैसी घटनाएं तुरंत विश्व के बदलते मौसम की भयावह तस्वीर खड़ी कर देती हैं। मौसम में बदलाव की अधिकांश बहस नीतियों से सम्बंधित मुद्दों के इर्द-गिर्द घूमती है।

हाल ही में कोपनहेगन में सम्पन्न हुए शिखर सम्मेलन में वैश्विक तपन का सामना करने के लिए विभिन्न देशों से अपेक्षित प्रतिबद्धताओं पर कोई समझौता नहीं हो सका। इसमें कोई शक नहीं कि इस मुद्दे पर निकट भविष्य में और भी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन होंगे।

मौसम में बदलाव के बारे में जन साधारण की समझ को दो वर्ष पूर्व अचानक बढ़ावा मिला जब अमेरिका के उप-राष्ट्रपति अल गोरे और मौसम में बदलाव पर अंतःसरकारी समिति (आईपीसीसी) को 2007 में नोबेल शांति पुरस्कार से नवाज़ा गया। संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने वैश्विक तापमान में वृद्धि करने वाली ग्रीनहाउस गैसों, विशेष रूप से कार्बन डाईऑक्साइड की बढ़ती मात्रा से चिंतित होकर 1988 में प्रस्ताव पारित किया था जिसके परिणामस्वरूप यह समिति गठित की गई थी। इसमें लगभग4000 वैज्ञानिक हैं जिन्होंने बड़ी मेहनत से वे रिपोर्टें तैयार की हैं जिनसे मौसम में बदलाव के प्रमाण सामने आए हैं।

कई सम्मेलनों में अब मशहूर हो चुका वह ग्राफ प्रदर्शित किया जा चुका है जिसमें कार्बन डाईऑक्साइड की बढ़ती मात्रा और बढ़ते वैश्विक तापमान के सम्बंध के माध्यम से यह दिखाया गया है कि मनुष्य की गतिविधियों के कारण वायुमंडल की संरचना किस प्रकार बदल रही है।

पिछले कुछ दिनों में आईपीसीसी की रिपोर्ट ऐसे आरोपों के कारण विवादास्पद हो गई है कि कुछ परिदृश्य, विशेष रूप से हिमालय के ग्लेशियरों के पिघलने सम्बंधी खंड, ठोस वैज्ञानिक आधार पर नहीं लिखे गए हैं। वैज्ञानिकों द्वारा एक दूसरे को भेजे गए ई-मेल्स के लीक हो जाने के कारण मौसम विज्ञान, मौसम वैज्ञानिक और नीति-निर्धारक सुर्खियों में आ गए हैं। मौसम में बदलाव से सम्बंधित रिपोर्टों का एक रोचक पहलू यह है कि इनमें मौसम विज्ञान के इतिहास के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है।

1820 के दशक में जोसफ फूरिये नामक वैज्ञानिक ने वैश्विक तापमान बनाए रखने में वातावरण की भूमिका को पहचाना था। इसके बाद सन 1861 में जॉन टिन्डल ने वायुमंडलीय गैसों द्वारा ऊष्मा सोखे जाने के बारे में शोध पत्र प्रकाशित किया। यह एक ऐसी घटना है जिसके माध्यम से मौसम विज्ञान की ओर ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए।

इसके लगभग चार दशकों बाद स्वांते अर्हेनियस ने यह पहचाना कि मनुष्य की गतिविधियों के कारण वातावरण अधिक गरम हो रहा है। हवा में पाए जाने वाले कार्बनिक एसिड के धरती के तापक्रम पर प्रभाव के बारे में उनके शोध पत्र को इस सिद्धांत की शुरुआत माना जाता है कि कार्बन डाईऑक्साइड के कारण जलवायु में परिवर्तन होता है। अच्छा होता कि 1996 को रसायन शास्त्र और मौसम के बीच सम्बंध जोड़ने के अर्हेनियस के प्रारंभिक प्रयास के शताब्दी वर्ष के रूप में मनाया जाता।

कई वर्षों बाद जी.एस. कैलेन्डर ने इस विषय को अपने शोधपत्र के माध्यम से फिर उठाया जिसका शीर्षक था 'कार्बन डाईऑक्साइड का कृत्रिम उत्पादन और उसका तापक्रम पर प्रभाव'। इसमें कोई शक नहीं कि इन तीनों वैज्ञानिकों (टिन्डल, अर्हेनियस और कैलेन्डर) ने यह पहचान लिया था कि विश्व के मौसम पर वायुमंडल के संगठन का असर होता है।1950 के दशक तक भी कार्बन डाईऑक्साइड सिद्धांत (कार्बन डाईऑक्साइड के कारण बढ़ते तापमान) पर विश्वास करने वाले कम ही लोग थे। वायुमंडल विज्ञान

एक अनाकर्षक क्षेत्र था।

मेरी इस क्षेत्र में रुचि तब जागृत हुई जब मैंने अमेरिकन साइंटिस्ट पत्रिका में 1956 में प्रकाशित एक लेख पढ़ा। इसे इसी पत्रिका के फरवरी 2010 के अंक में फिर से छापा गया है। इस लेख का शीर्षक था 'कार्बन डाईऑक्साइड और मौसम' और इसके लेखक थे गिलबर्ट प्लास। इस लेख में कहा गया था, "इस बात पर पुनर्विचार करना उचित होगा कि क्या वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में बदलाव से मौसम में हो रहे विश्वव्यापी बदलावों का संतोषजनक स्पष्टीकरण मिल जाता है।" गिलबर्ट प्लास (1920-2004) एक भौतिक शास्त्री थे जिन्होंने वायुमंडलीय अवरक्त विकिरण का व्यापक अध्ययन किया था। उन्होंने अपने शोध पत्र ('कार्बन डाईऑक्साइड के बदलावों का मौसम पर प्रभाव') में लिखा था कि भौतिक शास्त्री कार्बन डाईऑक्साइड सिद्धांत को इसलिए पसंद करते हैं कि इसके प्रभाव की गणना करने के लिए जो भी प्रायोगिक और सैद्धांतिक कार्य आवश्यक होता है वह उन्हीं के कार्य क्षेत्र में आता है। अपने इस निष्कर्ष को उन्होंने ज़ोर देकर प्रस्तुत किया है कि पृथ्वी के भूगर्भीय इतिहास में वायुमंडलीय कार्बन डाईऑक्साइड में कई बार बदलाव हुए हैं और इनके कारण मौसम पर प्रभाव पड़ा है।

प्लास को यह स्पष्ट था कि कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों का मौसम में होने वाले बदलाव से सम्बंध दिखाने के लिए पिछले युगों में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्राओं की जानकारी होना ज़रूरी है। उन्होंने यह भी भविष्यवाणी कर दी थी कि इसके लिए हमें समुद्र विज्ञान, भूगर्भ शास्त्र, जीव शास्त्र और खगोल विज्ञान जैसे अलग-अलग क्षेत्रों से प्रमाण जुटाने होंगे। प्लास के काम का आधार अवरक्त किरणों के अवशोषण और वायुमंडल की गैसों के गुणधर्मों का ठोस ज्ञान था। 'वातावरण में अवरक्त विकिरण' शीर्षक से प्रकाशित शोध पत्र में प्लास ने अवरक्त विकिरण के अध्ययन के आधार पर यह दिखाया कि ऑक्सीजन और नाइट्रोजन अवरक्त किरणों का अवशोषण नहीं करती हैं, जबकि ओज़ोन और कार्बन डाईऑक्साइड करती हैं। यही कारण है कि वैश्विक तापमान पर असर डालने वाला प्रमुख कारक कार्बन डाईऑक्साइड ही है।

यद्यपि प्लास के समय में वैश्विक तपन आज के समान ज्वलंत मुद्दा नहीं था, उन्होंने यह बहुत सटीक भविष्यवाणी कर दी थी कि बढ़ते उद्योगों से निकलने वाली कार्बन डाईऑक्साइड का वायुमंडल में इकट्ठा होते रहना एक बड़ी समस्या बन सकता है।

अमेरिकन साइंटिस्ट पत्रिका में प्रकाशित लेख पढ़ने के बाद मैंने इंटरनेट खंगालना शुरू किया, और मुझे वहां एक खज़ाना मिल गया - विज्ञान के इतिहासकार स्पेन्सर विअर्ट द्वारा बनाई गई एक वेबसाइट - वैश्विक तपन की खोज (http:www.aip.org/history/climate, June 2007)। विअर्ट ने मौसम परिवर्तन में रुचि रखने वालों के लिए निबंधों का एक अद्‌भुत संग्रह बनाया है। मौसम से सम्बंधित अध्ययनों के माध्यम से विअर्ट ने विज्ञान की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि "किसी भी क्षेत्र में काम करने वाले वैज्ञानिक एक टीम के समान काम न करते हुए ऐसे अव्यवस्थित ढंग से काम करते हैं कि ऐसा लगता है मानो यह एक संगठित दल न होकर एक भीड़ है जिसमें कुछ लोग इधर से उधर भाग रहे हैं, कुछ लोग एक समूह बनाकर आपस में अपने काम के बारे में चर्चा कर रहे हैं, कुछ लोग दूर से आ रही कोई आवाज़ सुनने की कोशिश कर रहे हैं, तो कुछ लोग शोर के ऊपर अपनी आवाज़ चढ़ाकर कोई आलोचना चिल्ला रहे हैं। हर कोई अलग-अलग दिशा में जा रहा है, और किसी निश्चित रुझान की पहचान करने में कुछ समय लग जाता है।" विअर्ट कहते हैं कि मौसम विज्ञान के क्षेत्र में प्रकाशित लगभग एक हज़ार महत्वपूर्ण शोध पत्रों की छानबीन करके उन्होंने यह जानने की कोशिश की कि आखिर इस क्षेत्र में हो क्या रहा है।

तेज़ी से बढ़ रहे इस क्षेत्र में ऐसी कोशिश करना निःसंदेह एक कठिन काम रहा होगा। किंतु इस बात के लिए विअर्ट की तारीफ करनी होगी कि उन्होंने इसे काफी सफलातापूर्वक किया है। इन पृष्ठों में प्रमुखता से उभरने वाले दो वैज्ञानिक हैं - रॉजर रेवेल (1909-1991) और चार्ल्स कीलिंग (1928-2005)। 1957 में हान्स सुइस के साथ संयुक्त रूप से प्रकाशित शोध पत्र में रेवेल ने यह तर्क

दिया था कि संसार के समंदरों द्वारा कार्बन डाईऑक्साइड के अवशोषण की गति उस गति की तुलना में काफी कम होती है जिससे मनुष्य की गतिविधियों द्वारा कार्बन डाईऑक्साइड वातावरण में छोड़ी जा रही है। यह कहा जा सकता है कि इस शोध पत्र से समुद्री भू-रसायन पर होने वाली बहस की शुरुआत हुई। अब यह स्पष्ट है कि रेवेल द्वारा मौसम विज्ञान के क्षेत्र में बाईकार्बोनेट रसायन का समावेश करना एक महत्वपूर्ण कदम था। रेवेल के नेतृत्व गुणों के कारण वे शीघ्र ही इस क्षेत्र के सबसे मुखर प्रवक्ता बन गए।

चार्ल्स कीलिंग ने 1957 में वातावरण में मौजूद कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा का मापन बड़ी मेहनत से और सटीक ढंग से शुरू किया। जिनकी विज्ञान के लिए धनराशि जुटाने में रुचि है उन्हें विअर्ट का निबंध 'कीलिंग के लिए धनराशिः कार्बन डाईऑक्साइड के स्तरों का मापन' अवश्य पढ़ना चाहिए। धनराशि के अभाव में भी अपने काम में जुटे रहने की कीलिंग की क्षमता समर्पण की भावना का एक ज्वलंत उदाहरण है। विअर्ट ने कहा है कि कुछ अधिकारियों का बस चलता तो वे कीलिंग को बाहर रख कर कार्बन डाईऑक्साइड के स्तरों का मापन करना अधिक पसंद करते। कीलिंग, प्लास और रेवेल द्वारा किए गए मापन आज के मौसम विज्ञान की बुनियाद हैं।

कोपनहेगन जाने का मार्ग बहुत पहले बन चुका था, किंतु इसे बनाने वालों को भुला दिया गया। जब आईपीसीसी का गठन हो रहा था तब ये तीनों वैज्ञानिक जीवित थे। यदि उस समय स्टॉकहोम (जहां आईपीसीसी का गठन हो रहा था) से एक बुलावा आ जाता तो कई अन्य लोग मौसम विज्ञान की ओर आकर्षित होते, बनिस्बत आज की स्थिति के जहां मौसम में बदलाव की राजनीति में ही अधिक रुचि ली जा रही है। क्या यह खतरा पैदा हो गया है कि मौसम में बदलाव के विवादों के शोर में मौसम विज्ञान ही डूब जाए ?

जेम्स लवलॉक ने अपनी ताज़ा किताब The Vanishing Face of Gaia: A Final Warning में यह गंभीर टिप्पणी की है, "शायद हम भूल गए हैं कि विज्ञान का आधार केवल सिद्धांत और मॉडल्स नहीं हो सकते। प्रयोग और अवलोकन, चाहे उबाऊ और थकाने वाले हों, उतने ही महत्वपूर्ण होते हैं। शायद सामाजिक कारणों से पिछले कुछ वर्षों में विज्ञान ने अपने काम का तरीका बदल दिया है। खर्चीले और लगातार बढ़ते जा रहे मॉडल्स की तुलना में मैदानी अवलोकनों और पृथ्वी पर किए जाने वाले छोटे-छोटे प्रयोगों का महत्व गौण हो गया है। ठोस आंकड़ों का हमारा भंडार समाप्त हो चुका है और हम सिद्धांत की हवाबाज़ी में उलझे हुए हैं।" यह ज़रूरी है कि मौसम में बदलाव के बारे में नीति सम्बंधी मुद्दों से अलग, मौसम विज्ञान की अपनी अलग पहचान हो। ऐसा होने पर ही भू विज्ञान की आवाज़ विवादों के शोर के बावजूद सुनी जा सकेगी। ***(स्रोत फीचर्स)***